Chapter छह

सौभरि मुनि का पतन

महाराज अम्बरीष के वंशजों का वर्णन करने के बाद शुकदेव गोस्वामी ने शशाद से लेकर मान्धाता तक सारे राजाओं का वर्णन किया और इस प्रसंग में उन्होंने यह भी वर्णन किया कि किस प्रकार सौभरि मुनि ने मान्धाता की पुत्रियों से विवाह किया।

महाराज अम्बरीष के तीन पुत्र थे—विरूप, केतुमान तथा शम्भु। विरूप का पुत्र पृषदश्व था, जिसका पुत्र रथीतर हुआ। रथीतर के कोई सन्तान नहीं थी, किन्तु अंगिरा ऋषि की कृपा याचना करने पर उसकी पत्नी के गर्भ से कई पुत्र हुए। इन पुत्रों के उत्पन्न होने पर वे अंगिरा ऋषि तथा रथीतर के वंशज कहलाये।

मनुपुत्र इक्ष्वाकु के एक सौ पुत्र हुए जिनमें से विकुक्षि, निमि तथा दण्डका सबसे बड़े थे। इक्ष्वाकु के पुत्र संसार के विभिन्न भागों के राजा बने। इनमें से विकुक्षि ने यज्ञ के विधि-विधानों का उल्लंघन किया जिससे उसे राज्य से निकाल दिया गया। वसिष्ठ की कृपा तथा योगशक्ति से महाराज इक्ष्वाकु को भौतिक शरीर-त्याग करने के बाद मोक्ष प्राप्त हुआ। महाराज इक्ष्वाकु की मृत्यु के बाद उसका पुत्र विकुक्षि वापस आया और उसने अपने राज्य की बागडोर सँभाली। उसने नाना प्रकार के यज्ञ किये और इस तरह भगवान् को प्रसन्न किया। बाद में यही विकुक्षि शशाद नाम से विख्यात हुआ।

विकुक्षि के पुत्र ने देवताओं के लिए असुरों से युद्ध किया और अपनी बहुमूल्य सेवा के कारण वह पुरञ्जय, इद्रवाह तथा ककुत्स्थ नाम से विख्यात हुआ। पुरञ्जय का पुत्र अनेना था और अनेना का पुत्र पृथु हुआ। पृथु का पुत्र विश्वगन्धि था। विश्वगन्धि का पुत्र चन्द्र हुआ, चन्द्र का पुत्र युवनाश्व और फिर उसका पुत्र श्रावस्त हुआ जिसने श्रावस्ती पुरी का निर्माण कराया। श्रावस्त का पुत्र बृहदाश्व हुआ। बृहदाश्व के पुत्र कुवलयाश्व ने धुन्धु नामक असुर का वध किया जिससे वह धुन्धुमार नाम से विख्यात हुआ। धुन्धुमार के पुत्रों के नाम थे दृढ़ाश्व, कपिलाश्व तथा भद्राश्व। इनके अतिरिक्त उसके हजारों पुत्र और भी थे लेकिन वे सभी धुन्धु से निकलने वाली अग्नि में जलकर राख हो गये थे। दृढ़ाश्व का पुत्र हर्यश्व हुआ, हर्यश्व का पुत्र निकुम्भ था और निकुम्भ का पुत्र बहुलाश्व तथा उसका पुत्र कृशाश्व हुआ। कृशाश्व का पुत्र सेनजित था और उसका पुत्र युवनाश्व हुआ।

युवनाश्व के एक सौ पत्नियाँ थीं, किन्तु उसके कोई सन्तान नहीं थी अतएव वह जंगल चला गया। जंगल में ऋषियों ने उसके लिए इन्द्रयज्ञ सम्पन्न किया। एक बार राजा जंगल में इतना प्यासा हुआ कि उसने यज्ञ के लिए रखा हुआ जल पी लिया। फलस्वरूप कुछ काल बाद उसकी दाहिनीकोख से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह पुत्र अत्यन्त सुन्दर था और स्तनपान करने के लिए रोने लगा अतएव इन्द्र ने उसे अपनी तर्जनी अँगुली चूसने को दे दी। इस तरह यह पुत्र मान्धाता कहलाया। कालान्तर में युवनाश्व ने तपस्या के बल पर सिद्धि प्राप्त की।

तत्पश्चात् मान्धाता सम्राट बना और उसने सप्तद्वीप वाली पृथ्वी पर राज्य किया। चोर तथा उचक्के इस बलशाली राजा से थर्राते थे इसलिए राजा त्रसद्दस्यु कहलाने लगा जिसका अर्थ है ''वह जिस से बदमाश और उचक्के भयभीत हों।'' मान्धाता की पत्नी बिन्दुमती के गर्भ से तीन पुत्र तथा पचास पुत्रियाँ उत्पन्न हुई। पुत्रों के नाम थे पुरुकुत्स, अम्बरीष तथा मुचुकुन्द। ये पचासों पुत्रियाँ सौभरि नामक ऋषि की पत्नियाँ बनीं।

इस प्रसंग में शुकदेव गोस्वामी ने सौभरि मुनि के इतिहास का वर्णन किया है जो मछली के प्रति ऐन्द्रिय विचलन के कारण अपने योग से पतित हुए और कामसुख के लिए मान्धाता की सभी पुत्रियों से विवाह करना चाहा। बाद में सौभरि मुनि को अत्यधिक पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने वानप्रस्थ आश्रम स्वीकार करके कठिन तपस्या की और इस तरह सिद्धि पाई। शुकदेव गोस्वामी ने यह भी वर्णन किया है कि किस तरह सौभरि मुनि की पत्नियाँ भी सिद्ध बनीं।

श्रीशुक उवाच
विरूपः केतुमाञ्छम्भुरम्बरीषसुतास्त्रयः ।
विरूपात्पृषदश्वोऽभूत्तत्पुत्रस्तु रथीतरः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; विरूपः—विरूप नामक; केतुमान्—केतुमान नामक; शम्भुः—शम्भु नामक; अम्बरीष—अम्बरीष महाराज के; सुताः त्रयः—तीन पुत्र; विरूपात्—विरूप से; पृषदश्वः—पृषदश्व नामक; अभूत्—था; तत्-पुत्रः—उसका पुत्र; तु—तथा; रथीतरः—रथीतर नामक।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे महाराज परीक्षित, अम्बरीष के तीन पुत्र हुए—विरूप, केतुमान तथा शम्भु। विरूप के पृषदश्व नामक पुत्र हुआ और पृषदश्व के रथीतर नामक पुत्र हुआ।

रथीतरस्याप्रजस्य भार्यायां तन्तवेऽर्थितः ।
अङ्गिरा जनयामास ब्रह्मवर्चस्विनः सुतान् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

रथीतरस्य—रथीतर की; अप्रजस्य—निःसन्तान; भार्यायाम्—अपनी पत्नी के; तन्तवे—सन्तान वृद्धि के लिए; अर्थितः—प्रार्थना किये जाने पर; अङ्गिराः—अंगिरा ऋषि; जनयाम् आस—उत्पन्न किया; ब्रह्म-वर्चस्विनः—ब्राह्मण गुणों से युक्त; सुतान्—पुत्रों को।

रथीतर निःसन्तान था अतएव उसने अंगिरा ऋषि से पुत्र उत्पन्न करने के लिए प्रार्थना की। इस प्रार्थना के फलस्वरूप अंगिरा ने रथीतर की पत्नी के गर्भ से पुत्र उत्पन्न कराये। ये सारे पुत्र ब्राह्मण तेज से सम्पन्न थे।

तात्पर्य : वैदिक युग में कभी-कभी निम्न कुल वाले पुरुष की पत्नी से अच्छी सन्तान उत्पन्न करने के लिए किसी उच्च पुरुष को बुलाया जाता था। ऐसी स्थिति में स्त्री की तुलना खेत से की जाती है। खेत वाला व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को अन्न उपजाने का काम सौंप सकता है, किन्तु उस खेत से जो अन्न उपजता है वह खेत के स्वामी का होता है। इसी प्रकार स्त्री को कभी-कभी अपने पति के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष से गर्भ धारण करना होता था, किन्तु इस तरह से उत्पन्न पुत्र उसके पति के पुत्र कहलाते थे। ये पुत्र *क्षेत्र-जात* कहलाते थे। चूँकि रथीतर के कोई पुत्र न था अतएव उसने इस विधि का लाभ उठाया।

एते क्षेत्रप्रसूता वै पुनस्त्वाङ्गिरसाः स्मृताः ।
रथीतराणां प्रवराः क्षेत्रोपेता द्विजातयः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

एते—अंगिरा द्वारा उत्पन्न पुत्र; क्षेत्र-प्रसूताः—रथीतर की सन्तान बने और उसके कुल के कहलाये (क्योंकि वे उसकी पत्नी के गर्भ से हुए थे); वै—निस्सन्देह; पुनः—फिर; तु—लेकिन; आङ्गिरसाः—अंगिरा के वंश के; स्मृताः—कहलाये; रथीतराणाम्—रथीतर के सारे पुत्रों का; प्रवराः—प्रमुख; क्षेत्र-उपेताः—क्षेत्र से उत्पन्न होने के कारण; द्वि-जातयः—ब्राह्मण कहलाये (ब्राह्मण तथा क्षत्रिय का मिश्रण होकर)।

रथीतर की पत्नी से जन्म लेने के कारण ये सारे पुत्र रथीतर के वंशज कहलाये, किन्तु अंगिरा के वीर्य से उत्पन्न होने के कारण वे अंगिरा के वंशज भी कहलाये। रथीतर की सन्तानों में से ये पुत्र सबसे अधिक प्रसिद्ध थे क्योंकि अपने जन्म के कारण ये ब्राह्मण समझे जाते थे।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने *द्वि-जातयः* शब्द का अर्थ ''मिश्रजाति'' दिया है जो ब्राह्मण तथा क्षत्रिय के मिश्रण का सूचक है।

क्षुवतस्तु मनोर्जज्ञे इक्ष्वाकुर्घ्राणतः सुतः ।
तस्य पुत्रशतज्येष्ठा विकुक्षिनिमिदण्डकाः ॥ ४॥

शब्दार्थ

क्षुवतः—छींकते समय; तु—लेकिन; मनोः—मनु के; जज्ञे—उत्पन्न हुआ; इक्ष्वाकुः—इक्ष्वाकु नामक; घ्राणतः—नथुनों से; सुतः—पुत्र; तस्य—इक्ष्वाकु के; पुत्र-शत—एक सौ पुत्र; ज्येष्ठाः—प्रमुख; विकुक्षि—विकुक्षि नामक; निमि—निमि नामक; दण्डकाः—दण्डका नामक।

मनु का पुत्र इक्ष्वाकु था। जब मनु छींक रहे थे तो इक्ष्वाकु उनके नथुनों से उत्पन्न हुआ था। राजा इक्ष्वाकु के एक सौ पुत्र थे जिनमें से विकुक्षि, निमि तथा दण्डका प्रमुख थे।

तात्पर्य : श्रीधर स्वामी के अनुसार यद्यपि *भागवत* में (९.१.११-१२) इक्ष्वाकु को मनु की पत्नी श्रद्धा से उत्पन्न दस पुत्रों में से एक माना गया है, किन्तु यह एक सामान्यीकरण है। यहाँ यह विशेष रूप से बतलाया गया है कि इक्ष्वाकु का जन्म मनु के छींकने मात्र से हुआ था।

तेषां पुरस्तादभवन्नार्यावर्ते नृपा नृप ।
पञ्चविंशतिः पश्चाच्च त्रयो मध्येऽपरेऽन्यतः ॥ ५॥

शब्दार्थ

तेषाम्—इन पुत्रों में से; पुरस्तात्—पूर्व दिशा में; अभवन्—वे बने; आर्यावर्ते—आर्यावर्त में, जो हिमालय तथा विन्ध्याचल पर्वतों के बीच का स्थान था; नृपाः—राजा; नृप—हे राजा (परीक्षित); पञ्च-विंशतिः—पच्चीस; पश्चात्—पश्चिम दिशा में; च—भी; त्रयः—उनमें से तीन; मध्ये—मध्य में (पूर्व और पश्चिम के बीच); अपरे—अन्य; अन्यतः—अन्य स्थानों में।

सौ पुत्रों में से पच्चीस पुत्र हिमालय तथा विन्ध्याचल पर्वतों के मध्यवर्ती स्थान आर्यावर्त के पश्चिमी भाग के राजा बने, पच्चीस पुत्र पूर्वी आर्यावर्त के राजा बने और तीन प्रमुख पुत्र मध्यवर्ती प्रदेश के राजा बने। शेष पुत्र अन्य विविध स्थानों के राजा बने।

स एकदाष्टकाश्राद्धे इक्ष्वाकुः सुतमादिशत् ।
मांसमानीयतां मेध्यं विकुक्षे गच्छ मा चिरम् ॥ ६॥

शब्दार्थ

सः—वह राजा (महाराज इक्ष्वाकु); एकदा—एक बार; अष्टका-श्राद्धे—जनवरी, फरवरी तथा मार्च के महीनों मे जब पितरों की श्राद्ध की जाती है; इक्ष्वाकुः—राजा इक्ष्वाकु ने; सुतम्—अपने पुत्र को; आदिशत्—आज्ञा दी; मांसम्—मांस; आनीयताम्—ले आओ; मेध्यम्—शुद्ध (शिकार करके); विकुक्षे—हे विकुक्षि; गच्छ—तुरन्त जाओ; मा चिरम्—बिना देर लगाये।

जनवरी, फरवरी तथा मार्च के महीनों में पितरों को दिये जाने वाली भेंटें अष्टका श्राद्ध कहलाती है। श्राद्ध महीने के कृष्णपक्ष में सम्पन्न किया जाता है। जब महाराज इक्ष्वाकु श्राद्ध मनाते हुए भेंटें दे रहे थे तो उन्होंने अपने पुत्र विकुक्षि को आदेश दिया कि वह तुरन्त जंगल में जाकर कुछ शुद्ध मांस

ले आये।

तथेति स वनं गत्वा मृगान्हत्वा क्रियार्हणान् ।
श्रान्तो बुभुक्षितो वीरः शशं चाददपस्मृतिः ॥ ७॥

शब्दार्थ

तथा—आदेशानुसार; इति—इस प्रकार; सः—विकुक्षि; वनम्—जंगल में; गत्वा—जाकर; मृगान्—पशुओं को; हत्वा—मारकर; क्रिया-अर्हणान्—श्राद्ध में यज्ञ करने के उपयुक्त; श्रान्तः—थका हुआ; बुभुक्षितः—तथा भूखा; वीरः—वीर पुरुष; शशम्—खरहे को; च—भी; आदत्—खाया; अपस्मृतिः—यह भूल गया (कि यह मांस श्राद्ध में भेंट के लिए है)।

तत्पश्चात् इक्ष्वाकु पुत्र विकुक्षि जंगल में गया और उसने श्राद्ध में भेंट देने के लिए अनेक पशु मारे। किन्तु जब वह थक गया और भूखा हुआ तो भूल से उसने मारे हुए एक खरगोश को खा लिया।

तात्पर्य : स्पष्ट है कि क्षत्रिय लोग जंगल में जाकर पशुओं का वध करते थे क्योंकि पशुओं का मांस विशेष प्रकार के यज्ञों में भेंट चढ़ाया जाता था। श्राद्ध में पूर्वजों को भेंटें चढ़ाना भी एक प्रकार का यज्ञ है। इस यज्ञ में जंगल में किए गए शिकार से प्राप्त किया गया मांस भेंट किया जाता था। लेकिन अधुना कलियुग में ऐसी भेंट चढ़ाना वर्जित है। *ब्रह्मवैवर्त पुराण* से उद्धरण देते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा—

अश्वमेधं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम् ।
देवरेण सुतोत्पत्तिं कलौ पञ्च विवर्जयेत् ॥

''इस कलिकाल में पाँच कर्म वर्जित हैं—यज्ञ में घोड़े की बलि, यज्ञ में गाय की बलि, संन्यास आश्रम ग्रहण करना, पितरों को श्राद्ध में मांस भेंट करना तथा अपने अनुज की पत्नी से सन्तान उत्पन्न करना।'' *पल-पैतृकम्* शब्द पितरों के श्राद्ध में मांस की भेंट चढ़ाने का सूचक है। पहले ऐसी भेंट की अनुमति दी जाती थी, किन्तु इस युग में यह वर्जित है। कलियुग में हर व्यक्ति पशु का शिकार करने में पटु है, किन्तु अधिकांश लोग क्षत्रिय न होकर शूद्र हैं। वैदिक आदेशानुसार क्षत्रिय ही शिकार कर सकते हैं जबकि शूद्रों को देवी काली या अन्य देवताओं के अर्चाविग्रह के समक्ष बकरे या अन्य नगण्य पशुओं की बलि देकर मांस खाने की अनुमति प्राप्त है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि मांस खाना सर्वथा वर्जित नहीं है; किसी विशेष श्रेणी के व्यक्तियों को विविध परिस्थितियों एवं आदेशों के अनुसार मांस खाने की अनुमति प्राप्त है। किन्तु जहाँ तक गोमांस खाने की बात है, यह सर्वथा वर्जित है। इसीलिए *भगवद्गीता* में कृष्ण

स्वयं गोरक्ष्यम् अर्थात् गोरक्षा की बात कहते हैं। मांस खाने वालों को विभिन्न स्थितियों एवं शास्त्रों के निर्देशानुसार मांस खाने की अनुमति मिली है लेकिन गोमांस की कदापि नहीं। गायों की पूरी तरह से रक्षा की जानी चाहिए।

शेषं निवेदयामास पित्रे तेन च तद्गुरुः ।
चोदितः प्रोक्षणायाह दुष्टमेतदकर्मकम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

शेषम्—उच्छिष्ट; निवेदयाम् आस—उसने प्रदान किया; पित्रे—अपने पिता को; तेन—उसके द्वारा; च—भी; तत्-गुरुः—उनके गुरु ने; चोदितः—आग्रह किये जाने पर; प्रोक्षणाय—शुद्ध करने के लिए; आह—कहा; दुष्टम्—प्रदूषित; एतत्—यह मांस; अकर्मकम्—श्राद्ध में अर्पित करने के अयोग्य।

विकुक्षि ने शेष मांस राजा इक्ष्वाकु को लाकर दे दिया जिन्होंने उसे शुद्ध करने के लिए वसिष्ठ को दे दिया। लेकिन वसिष्ठ यह तुरन्त समझ गये कि उस मांस का कुछ भाग विकुक्षि ने पहले ही ग्रहण कर लिया है; अतएव उन्होंने कहा कि यह मांस श्राद्ध में प्रयुक्त होने केलिए अनुपयुक्त है।

तात्पर्य : यज्ञ में प्रयुक्त की जाने वाली किसी भी वस्तु को अर्चाविग्रह को भेंट किये बिना चखा नहीं जा सकता। हमारे मन्दिरों में यह नियम लागू है। जब तक भोजन अर्चाविग्रह को अर्पित नहीं कर दिया जाता तब तक कोई व्यक्ति रसोई से भोजन खा नहीं सकता। यदि अर्चाविग्रह को भेंट करने के पूर्व कुछ भी निकाल लिया जाता है तो सारा भोजन दूषित हो जाता है और उसे अर्चाविग्रह पर नहीं चढ़ाया जाता। जो लोग अर्चाविग्रह की पूजा करते हैं उन्हें इसे ठीक से जान लेना चाहिए जिससे वे अर्चाविग्रह पूजा में अपराध करने से बचे रहें।

ज्ञात्वा पुत्रस्य तत्कर्म गुरुणाभिहितं नृपः ।
देशान्निःसारयामास सुतं त्यक्तविधिं रुषा ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

ज्ञात्वा—जान लेने पर; पुत्रस्य—अपने पुत्र की; तत्—वह; कर्म—करनी; गुरुणा—गुरु (वसिष्ठ) द्वारा; अभिहितम्—सूचित किया गया; नृपः—राजा (इक्ष्वाकु) ने; देशात्—देश से; निःसारयाम् आस—निकाल दिया; सुतम्—पुत्र को; त्यक्त-विधिम्—क्योंकि उसने विधान का उल्लंघन किया था; रुषा—क्रोध में आकर।

जब राजा इक्ष्वाकु वसिष्ठ द्वारा बताये जाने पर समझ गये कि उनके पुत्र विकुक्षि ने क्या किया है तो वे अत्यन्त क्रुद्ध हुए। इस प्रकार उन्होंने विकुक्षि को देश छोड़ने की आज्ञा दे दी क्योंकि उसने

विधि-विधान का उल्लंघन किया था।

स तु विप्रेण संवादं ज्ञापकेन समाचरन् ।
त्यक्त्वा कलेवरं योगी स तेनावाप यत्परम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

सः—महाराज इक्ष्वाकु; तु—निस्सन्देह; विप्रेण—ब्राह्मण (वसिष्ठ) के साथ; संवादम्—वार्तालाप; ज्ञापकेन—सूचना देने वाले के साथ; समाचरन्—तदनुसार करते हुए; त्यक्त्वा—त्यागकर; कलेवरम्—शरीर को; योगी—संन्यास लेकर भक्तियोगी बनकर; सः—राजा; तेन—ऐसे उपदेश से; अवाप—प्राप्त किया; यत्—वह पद जो; परम्—सर्वश्रेष्ठ।

महान् एवं विद्वान ब्राह्मण वसिष्ठ के साथ परम सत्य विषयक वार्तालाप के बाद उनके द्वारा उपदेश दिये जाने पर महाराज इक्ष्वाकु विरक्त हो गये। उन्होंने योगी के नियमों का पालन करते हुए भौतिक शरीर त्यागने के बाद परम सिद्धि प्राप्त की।

पितर्युपरतेऽभ्येत्य विकुक्षिः पृथिवीमिमाम् ।
शासदीजे हरिं यज्ञैः शशाद इति विश्रुतः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

पितरि—अपने पिता के; उपरते—राज्य छोड़ने पर; अभ्येत्य—वापस आकर; विकुक्षिः—विकुक्षि ने; पृथिवीम्—पृथ्वीलोक को; इमाम्—इस; शासत्—शासन करते हुए; ईजे—पूजा की; हरिम्—भगवान् की; यज्ञैः—यज्ञों के द्वारा; शश-अदः—शशाद (खरगोश खाने वाला); इति—इस प्रकार; विश्रुतः—विख्यात हुआ।

अपने पिता के चले जाने पर विकुक्षि अपने देश लौट आया और पृथ्वीलोक पर शासन करते हुए तथा भगवान् को प्रसन्न करने के लिए विविध यज्ञ करते हुए वह राजा बना। बाद में विकुक्षि शशाद नाम से विख्यात हुआ।

पुरञ्जयस्तस्य सुत इन्द्रवाह इतीरितः ।
ककुत्स्थ इति चाप्युक्तः शृणु नामानि कर्मभिः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

पुरम्-जयः—पुरञ्जय (पुर का विजेता); तस्य—उसका (विकुक्षि का); सुतः—पुत्र; इन्द्र-वाहः—इन्द्रवाह (इन्द्र जिसका वाहन है); इति—इस प्रकार; ईरितः—विख्यात; ककुत्स्थः—ककुत्स्थ (बैल के डिल्ले पर स्थित); इति—इस प्रकार; च—भी; अपि—निस्सन्देह; उक्तः—इस तरह ज्ञात; शृणु—सुनो; नामानि—सारे नाम; कर्मभिः—अपने-अपने कर्म के अनुसार।

शशाद का पुत्र पुरञ्जय हुआ जो इन्द्रवाह के रूप में और कभी-कभी ककुत्स्थ के नाम से विख्यात है। अब मुझसे यह सुनो कि उसने विभिन्न कार्यों के लिए भिन्न-भिन्न नाम किस तरह प्राप्त किये।

कृतान्त आसीत्समरो देवानां सह दानवैः ।
पार्ष्णिग्राहो वृतो वीरो देवैर्दैत्यपराजितैः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

कृत-अन्तः—विनाशकारी युद्ध; आसीत्—था; समरः—युद्ध; देवानाम्—देवताओं के; सह—के साथ; दानवैः—असुरों; पार्ष्णिग्राहः—अच्छा सहायक; वृतः—स्वीकार किया; वीरः—वीर; देवैः—देवताओं के द्वारा; दैत्य—दैत्यों के द्वारा; पराजितैः—जो हराये जा चुके थे।

पूर्वकाल में देवताओं तथा असुरों के मध्य एक घमासान युद्ध हुआ। पराजित होकर देवताओं ने पुरञ्जय को अपना सहायक बनाया और तब वे असुरों को पराजित कर सके। अतएव यह वीर पुरञ्जय कहलाता है अर्थात् जिसने असुरों के निवासों को जीत लिया है।

वचनाद्देवदेवस्य विष्णोर्विश्वात्मनः प्रभोः ।
वाहनत्वे वृतस्तस्य बभूवेन्द्रो महावृषः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

वचनात्—आदेश या वचनों से; देव-देवस्य—समस्त देवताओं के स्वामी; विष्णोः—भगवान् विष्णु का; विश्व-आत्मनः—सम्पूर्ण सृष्टि के परमात्मा; प्रभोः—भगवान् या नियन्ता का; वाहनत्वे—वाहन बनने के कारण; वृतः—लगा हुआ; तस्य—पुरञ्जय की सेवा में; बभूव—बन गया; इन्द्रः—इन्द्र; महा-वृषः—बड़ा सा बैल।

पुरञ्जय ने सारे असुरों को इस शर्त पर मारना स्वीकार किया कि इन्द्र उसका वाहन बनेगा। किन्तु गर्ववश इन्द्र ने यह प्रस्ताव पहले अस्वीकार कर दिया, किन्तु बाद में भगवान् विष्णु के आदेश से उसने इसे स्वीकार कर लिया और पुरञ्जय की सवारी के लिए वह बड़ा सा बैल बन गया।

स सन्नद्धो धनुर्दिव्यमादाय विशिखाञ्छितान् ।
स्तूयमानस्तमारुह्य युयुत्सुः ककुदि स्थितः ॥ १५ ॥
तेजसाप्यायितो विष्णोः पुरुषस्य महात्मनः ।
प्रतीच्यां दिशि दैत्यानां न्यरुणत्त्रिदशैः पुरम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

सः—पुरञ्जय; सन्नद्धः—पूरी तरह युक्त होकर; धनुः दिव्यम्—श्रेष्ठ या दिव्य धनुष; आदाय—लेकर; विशिखान्—तीरों को; शितान्—अत्यन्त पैने; स्तूयमानः—अत्यधिक प्रशंसित होकर; तम्—उस (बैल पर); आरुह्य—चढ़कर; युयुत्सुः—लड़ने के लिए तैयार होकर; ककुदि—बैल के डिल्ले पर; स्थितः—स्थित; तेजसा—बल से; आप्यायितः—कृपाप्राप्त; विष्णोः—विष्णु के; पुरुषस्य—परम पुरुष; महा-आत्मनः—परमात्मा; प्रतीच्याम्—पश्चिमी; दिशि—दिशा में; दैत्यानाम्—असुरों का; न्यरुणत्—कब्जे में कर लिया; त्रिदशैः—देवताओं को साथ लेकर; पुरम्—आवास को।

कवच से भलीभाँति सुरक्षित होकर और युद्ध करने की इच्छा से पुरञ्जय ने अपना दिव्य धनुष तथा अत्यन्त तीक्ष्ण बाण धारण किया और देवताओं द्वारा अत्यधिक प्रशंसित होकर वह बैल (इन्द्र)

की पीठ पर सवार हुआ तथा उसके डिल्ले पर बैठ गया। इसलिए वह ककुत्स्थ कहलाता है। परमात्मा तथा परम पुरुष भगवान् विष्णु से शक्ति प्राप्त करके पुरञ्जय उस बड़े बैल पर सवार हो गया, इसलिए वह इन्द्रवाह कहलाता है। देवताओं को साथ लेकर उसने पश्चिम में असुरों के निवासस्थानों पर आक्रमण कर दिया।

तैस्तस्य चाभूत्प्रधनं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
यमाय भल्लैरनयद्दैत्यानभिययुर्मृधे ॥ १७॥

शब्दार्थ

तैः—असुरों के साथ; तस्य—उसकी; च—भी; अभूत्—हुई; प्रधनम्—लड़ाई; तुमुलम्—घनघोर; लोम-हर्षणम्—जिसे सुनकर रोमांच हो जाता है; यमाय—यमराज के घर के लिए; भल्लैः—तीरों से; अनयत्—भेज दिया; दैत्यान्—असुरों को; अभिययुः—जो उसकी ओर आये; मृधे—उस युद्ध में।

असुरों तथा पुरञ्जय के मध्य घनघोर लड़ाई छिड़ गई। निस्सन्देह, यह इतनी भयानक थी कि सुनने वाले के रोंगटे खड़े हो जाते। जितने सारे असुर पुरञ्जय के समक्ष आने का साहस करते वे सभी उसके तीरों से तुरन्त यमराज के घर भेज दिये जाते।

तस्येषुपाताभिमुखं युगान्ताग्निमिवोल्बणम् ।
विसृज्य दुद्रुवुर्दैत्या हन्यमानाः स्वमालयम् ॥ १८॥

शब्दार्थ

तस्य—उसके (पुरञ्जय के); इषु-पात—तीर फेंकने; अभिमुखम्—के समक्ष; युग-अन्त—युग के अन्त में; अग्निम्—ज्वाला; इव—सदृश; उल्बणम्—भयानक; विसृज्य—आक्रमण करना छोड़कर; दुद्रुवुः—भग गये; दैत्याः—सारे असुर; हन्यमानाः—मारे जाकर (पुरञ्जय द्वारा); स्वम्—अपने; आलयम्—घर को।

इन्द्रवाह के अग्नि उगलते तीरों से अपने को बचाने के लिए वे असुर, जो अपनी सेना के मारे जाने के बाद बचे थे, तेजी से अपने-अपने घरों को भाग खड़े हुए क्योंकि यह अग्नि युग के अन्त में उठने वाली प्रलयाग्नि के समान थी।

जित्वा परं धनं सर्वं सस्त्रीकं वज्रपाणये ।
प्रत्ययच्छत्स राजर्षिरिति नामभिराहृतः ॥ १९॥

शब्दार्थ

जित्वा—जीतकर; परम्—दुश्मनों को; धनम्—धन को; सर्वम्—हर वस्तु; स-स्त्रीकम्—उनकी पत्नियों समेत; वज्र-पाणये—इन्द्र को जो वज्र धारण करता है; प्रत्ययच्छत्—लौटाकर दे दिया; सः—वह; राज-ऋषिः—सन्त राजा (पुरञ्जय); इति—इस प्रकार; नामभिः—नामों से; आहृतः—पुकारा जाता था।

शत्रु को जीतने के बाद सन्त राजा पुरञ्जय ने वज्रधारी इन्द्र को सब कुछ लौटा दिया जिसमें शत्रु का धन तथा पत्नियाँ सम्मिलित थीं। इसी हेतु वह पुरञ्जय नाम से विख्यात है। इस तरह पुरञ्जय अपने विविध कार्यकलापों के कारण विभिन्न नामों से जाना जाता है।

पुरञ्जयस्य पुत्रोऽभूदनेनास्तत्सुतः पृथुः ।
विश्वगन्धिस्ततश्चन्द्रो युवनाश्वस्तु तत्सुतः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

पुरञ्जयस्य—पुरञ्जय का; पुत्रः—पुत्र; अभूत्—हुआ; अनेनाः—अनेना नामक; तत्-सुतः—उसका पुत्र; पृथुः—पृथु; विश्वगन्धिः—विश्वगन्धि नामक; ततः—उसका पुत्र; चन्द्रः—चन्द्र; युवनाश्वः—युवनाश्व नामधारी; तु—निस्सन्देह; तत्-सुतः—उसका पुत्र।

पुरञ्जय का पुत्र अनेना कहलाया। अनेना का पुत्र पृथु था और पृथु का पुत्र विश्वगन्धि। विश्वगन्धि का पुत्र चन्द्र हुआ और चन्द्र का पुत्र युवनाश्व था।

श्रावस्तस्तत्सुतो येन श्रावस्ती निर्ममे पुरी ।
बृहदश्वस्तु श्रावस्तिस्ततः कुवलयाश्वकः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

श्रावस्तः—श्रावस्त नामक; तत्-सुतः—युवनाश्व का पुत्र; येन—जिसके द्वारा; श्रावस्ती—श्रावस्ती नामक; निर्ममे—निर्मित कराई गई; पुरी—नगरी; बृहदश्वः—बृहदश्व; तु—किन्तु; श्रावस्तिः—श्रावस्त से उत्पन्न; ततः—उससे; कुवलयाश्वकः—कुवलयाश्व नामधारी।

युवनाश्व का पुत्र श्रावस्त था जिसने श्रावस्ती नामक पुरी का निर्माण कराया। श्रावस्त का पुत्र बृहदश्व था और उसका पुत्र कुवलयाश्व था। इस तरह यह वंश बढ़ता रहा।

यः प्रियार्थमुतङ्कस्य धुन्धुनामासुरं बली ।
सुतानामेकविंशत्या सहस्रैरहनद्वृतः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; प्रिय-अर्थम्—संतोष के लिए; उतङ्कस्य—उतंक नामक ऋषि का; धुन्धु-नाम—धुन्धु नाम के; असुरम्—असुर को; बली—अत्यन्त शक्तिशाली (कुवलयाश्व); सुतानाम्—पुत्रों को; एक-विंशत्या—इक्कीस; सहस्रैः—हजार; अहनत्—मार डाला; वृतः—घिरा हुआ।

उतंक ऋषि को संतुष्ट करने के लिए परम शक्तिशाली कुवलयाश्व ने धुन्धु नामक असुर का वध किया। उसने अपने इक्कीस हजार पुत्रों की सहायता से ऐसा किया।

धुन्धुमार इति ख्यातस्तत्सुतास्ते च जज्वलुः ।
धुन्धोर्मुखाग्निना सर्वे त्रय एवावशेषिताः ॥ २३ ॥

दृढाश्वः कपिलाश्वश्च भद्राश्व इति भारत ।
दृढाश्वपुत्रो हर्यश्वो निकुम्भस्तत्सुतः स्मृतः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

धुन्धु-मारः—धुन्धु को मारने वाला; इति—इस प्रकार; ख्यातः—प्रसिद्ध; तत्-सुताः—उसके पुत्रों ने; ते—उन सभी; च—भी; जज्वलुः—जला दिया; धुन्धोः—धुन्धु के; मुख-अग्निना—मुख से निकलती अग्नि से; सर्वे—वे सभी; त्रयः—तीन; एव—केवल; अवशेषिताः—जीवित बचे; दृढाश्वः—दृढ़ाश्व; कपिलाश्वः—कपिलाश्व; च—तथा; भद्राश्वः—भद्राश्व; इति—इस प्रकार; भारत—हे महाराज परीक्षित; दृढाश्व-पुत्रः—दृढ़ाश्व का पुत्र; हर्यश्वः—हर्यश्व; निकुम्भः—निकुम्भ; तत्-सुतः—उसका पुत्र; स्मृतः—विख्यात।

हे महाराज परीक्षित, इस कारण से कुवलयाश्व धुन्धुमार कहलाता है। किन्तु उसके तीन पुत्रों को छोड़कर शेष सभी धुन्धु के मुख से निकलने वाली अग्नि से जलकर राख हो गये। बचे हुए पुत्रों के नाम हैं—दृढ़ाश्व, कपिलाश्व तथा भद्राश्व। दृढ़ाश्व के हर्यश्व नामक पुत्र हुआ जिसका पुत्र निकुम्भ नाम से विख्यात है।

बहुलाश्वो निकुम्भस्य कृशाश्वोऽथास्य सेनजित् ।
युवनाश्वोऽभवत्तस्य सोऽनपत्यो वनं गतः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

बहुलाश्वः—बहुलाश्व का; निकुम्भस्य—निकुम्भ का; कृशाश्वः—कृशाश्व; अथ—तत्पश्चात्; अस्य—कृशाश्व का; सेनजित्—सेनजित; युवनाश्वः—युवनाश्व; अभवत्—उत्पन्न हुआ; तस्य—सेनजित के; सः—वह; अनपत्यः—निःसन्तान; वनम् गतः—वानप्रस्थी बनकर जंगल चला गया।

निकुम्भ का पुत्र बहुलाश्व था, बहुलाश्व का पुत्र कृशाश्व और कृशाश्व का पुत्र सेनजित हुआ। सेनजित का पुत्र युवनाश्व था। युवनाश्व के कोई सन्तान नहीं थी इसलिए वह गृहस्थ जीवन त्यागकर जंगल चला गया।

भार्याशतेन निर्विण्ण ऋषयोऽस्य कृपालवः ।
इष्टिं स्म वर्तयां चक्रुरैन्द्रीं ते सुसमाहिताः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

भार्या-शतेन—एक सौ पत्नियों के साथ; निर्विण्णः—अत्यन्त खिन्न; ऋषयः—ऋषिगण; अस्य—उस पर; कृपालवः—अत्यन्त कृपालु; इष्टिम्—एक अनुष्ठान; स्म—भूतकाल में; वर्तयाम् चक्रुः—सम्पन्न करने लगा; ऐन्द्रीम्—इन्द्रयज्ञ; ते—वे सभी; सु-समाहिताः—अत्यन्त सावधान।

यद्यपि युवनाश्व अपनी एक सौ पत्नियों सहित जंगल में चला गया, किन्तु वे सभी अत्यन्त खिन्न थीं। तथापि जंगल के ऋषि राजा पर अत्यन्त दयालु थे, अतएव वे मनोयोगपूर्वक इन्द्रयज्ञ करने लगे

जिससे राजा के पुत्र उत्पन्न हो सके।

तात्पर्य : यदि कोई चाहे तो अपनी पत्नी के साथ वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश हो सकता है, किन्तु वानप्रस्थ आश्रम का अर्थ है गृहस्थ जीवन से पूर्ण विरक्ति। यद्यपि युवनाश्व गृहस्थ जीवन से विरक्त हो चुका था, किन्तु वे और उसकी पत्नियाँ कोई सन्तान न होने के कारण सदा खिन्न रहती थीं।

राजा तद्यज्ञसदनं प्रविष्टो निशि तर्षितः ।
दृष्ट्वा शयानान्विप्रांस्तान्पपौ मन्त्रजलं स्वयम् ॥ २७॥

शब्दार्थ

राजा—राजा (युवनाश्व); तत्-यज्ञ-सदनम्—यज्ञशाला में; प्रविष्टः—प्रवेश किया; निशि—रात में; तर्षितः—प्यासे होने के कारण; दृष्ट्वा—देखकर; शयानान्—लेटे हुए; विप्रान्—ब्राह्मणों को; तान्—उन सभी; पपौ—पी लिया; मन्त्र-जलम्—मंत्र द्वारा पवित्र किया हुआ जल; स्वयम्—खुद।

एक रात्रि को प्यासे होने के कारण राजा यज्ञशाला में घुस गया और जब उसने देखा कि सारे ब्राह्मण लेटे हुए हैं तो उसने अपनी पत्नी के पीने के लिए रखे हुए मंत्र से पवित्र किये गये जल को स्वयं पी लिया।

तात्पर्य : वैदिक अनुष्ठानों के अनुसार ब्राह्मणों द्वारा सम्पन्न यज्ञ इतने शक्तिशाली होते हैं कि वैदिक मंत्रों से पवित्र किया हुआ जल वांछित फल देने वाला हो सकता है। यहाँ पर ब्राह्मणों ने जल को पवित्र किया था जिससे राजा की पत्नी उसे यज्ञ में पी सके, किन्तु दैववश राजा रात में वहाँ गया और प्यासा होने के कारण वह वही जल पी गया।

उत्थितास्ते निशम्याथ व्युदकं कलशं प्रभो ।
पप्रच्छुः कस्य कर्मेदं पीतं पुंसवनं जलम् ॥ २८॥

शब्दार्थ

उत्थिताः—जगने पर; ते—वे सभी; निशम्य—देखकर; अथ—तत्पश्चात्; व्युदकम्—रिक्त, खाली; कलशम्—जलपात्र को; प्रभो—हे राजा परीक्षित; पप्रच्छुः—पूछा; कस्य—किसका; कर्म—करतूत; इदम्—यह; पीतम्—पिया हुआ; पुंसवनम्—सन्तान उत्पन्न करने वाला; जलम्—जल।

जब सारे ब्राह्मण जगे और उन्होंने देखा कि जलपात्र खाली है तो उन्होंने पूछा कि संतान उत्पन्न करने वाले जल को किसने पिया है?

राज्ञा पीतं विदित्वा वै ईश्वरप्रहितेन ते ।
ईश्वराय नमश्चक्रुरहो दैवबलं बलम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

राज्ञा—राजा द्वारा; पीतम्—पिया गया; विदित्वा—यह जानकर; वै—निस्सन्देह; ईश्वर-प्रहितेन—विधाता द्वारा प्रेरित; ते—उन सबों ने; ईश्वराय—ईश्वर को; नमः चक्रुः—नमस्कार किया; अहो—ओह; दैव-बलम्—दैवी शक्ति; बलम्—वास्तविक बल है।

जब ब्राह्मणों को यह ज्ञात हुआ कि ईश्वर द्वारा प्रेरित होकर राजा ने जल पी लिया है तो उन्होंने विस्मित होकर कहा, ''ओह! विधाता की शक्ति ही असली शक्ति है। ईश्वर की शक्ति का कोई भी निराकरण नहीं कर सकता।'' इस तरह उन्होंने भगवान् को सादर नमस्कार किया।

ततः काल उपावृत्ते कुक्षिं निर्भिद्य दक्षिणम् ।
युवनाश्वस्य तनयश्चक्रवर्ती जजान ह ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; काले—समय; उपावृत्ते—पूरा हो जाने पर; कुक्षिम्—उदर का निचला भाग; निर्भिद्य—भेदकर; दक्षिणम्—दाहिनी ओर का; युवनाश्वस्य—राजा युवनाश्व का; तनयः—पुत्र; चक्रवर्ती—राजा के सारे उत्तम लक्षणों से युक्त; जजान—उत्पन्न किया; ह—भूतकाल में।

तत्पश्चात् कालक्रम से राजा युवनाश्व के उदर के दाहिनी ओर के निचले भाग से चक्रवर्ती राजा के उत्तम लक्षणों से युक्त एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

कं धास्यति कुमारोऽयं स्तन्ये रोरूयते भृशम् ।
मां धाता वत्स मा रोदीरितीन्द्रो देशिनीमदात् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

कम्—किसके द्वारा; धास्यति—स्तन का दूध पिलाकर पाला जायेगा; कुमारः—बालक; अयम्—यह; स्तन्ये—स्तन का दूध पीने के लिए; रोरूयते—रो रहा है; भृशम्—अत्यधिक; माम् धाता—मुझको पियो; वत्स—प्यारे बेटे; मा रोदीः—मत रोओ; इति—इस प्रकार; इन्द्रः—इन्द्र ने; देशिनीम्—तर्जनी अँगुली; अदात्—चूसने के लिए दे दी।

वह बालक स्तन के दूध के लिए इतना अधिक रोया कि सारे ब्राह्मण चिन्तित हो उठे। उन्होंने कहा ''इस बालक को कौन पालेगा?'' तब उस यज्ञ में पूजित इन्द्र आये और उन्होंने बालक को सान्त्वना दी ''मत रोओ।'' फिर इन्द्र ने उस बालक के मुँह में अपनी तर्जनी अँगुली डालकर कहा ''तुम मुझे पी सकते हो।''

न ममार पिता तस्य विप्रदेवप्रसादतः ।
युवनाश्वोऽथ तत्रैव तपसा सिद्धिमन्वगात् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; ममार—मरा; पिता—पिता; तस्य—बालक का; विप्र-देव-प्रसादतः—ब्राह्मणों की कृपा तथा आशीर्वाद से; युवनाश्वः—राजा युवनाश्व; अथ—तत्पश्चात्; तत्र एव—वहीं; तपसा—तपस्या द्वारा; सिद्धिम्—सिद्धि; अन्वगात्—प्राप्त की।

चूँकि उस बालक के पिता युवनाश्व को ब्राह्मणों का आशीर्वाद प्राप्त था अतः वह मृत्यु का शिकार नहीं हुआ। इस घटना के बाद उसने कठिन तपस्या की और उसी स्थान पर सिद्धि प्राप्त की।

त्रसद्दस्युरितीन्द्रोऽङ्ग विदधे नाम यस्य वै ।
यस्मात्त्रसन्ति ह्युद्विग्ना दस्यवो रावणादयः ॥ ३३ ॥
यौवनाश्वोऽथ मान्धाता चक्रवर्त्यवनीं प्रभुः ।
सप्तद्वीपवतीमेकः शशासाच्युततेजसा ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

त्रसत्-दस्युः—त्रसद्दस्यु नाम का (जो चोरों उचक्कों को धमकाये); इति—इस प्रकार; इन्द्रः—इन्द्र; अङ्ग—हे राजा; विदधे—दिया; नाम—नाम; यस्य—जिसका; वै—निस्सन्देह; यस्मात्—जिससे; त्रसन्ति—डरे हुए; हि—निश्चय ही; उद्विग्नाः—चिन्ता का कारण; दस्यवः—चोर-उचक्के; रावण-आदयः—रावण इत्यादि राक्षस; यौवनाश्वः—युवनाश्व का पुत्र; अथ—इस प्रकार; मान्धाता—मान्धाता नाम से विख्यात; चक्रवर्ती—सारे विश्व का सम्राट; अवनीम्—पृथ्वी पर; प्रभुः—स्वामी; सप्त-द्वीप-वतीम्—सात द्वीपों वाली; एकः—एकमात्र; शशास—शासन किया; अच्युत-तेजसा—भगवान् की कृपा से अत्यन्त शक्तिशाली होने से।

युवनाश्व-पुत्र मान्धाता, रावण तथा चिन्ता उत्पन्न करने वाले अन्य चोर उचक्कों के लिए भय का कारण बना था। हे राजा परीक्षित, चूँकि वे सब उससे भयभीत रहते थे, अतएव युवनाश्व का पुत्र त्रसद्दस्यु कहलाता था। यह नाम इन्द्र द्वारा रखा गया था। भगवान् की कृपा से युवनाश्व-पुत्र इतना शक्तिशाली था कि जब वह सम्राट बना तो उसने सात द्वीपों से युक्त सारे विश्व पर शासन किया। वह अद्वितीय शासक था।

ईजे च यज्ञं क्रतुभिरात्मविद्भूरिदक्षिणैः ।
सर्वदेवमयं देवं सर्वात्मकमतीन्द्रियम् ॥ ३५ ॥
द्रव्यं मन्त्रो विधिर्यज्ञो यजमानस्तथर्त्विजः ।
धर्मो देशश्च कालश्च सर्वमेतद्यदात्मकम् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

ईजे—उसने पूजा की; च—भी; यज्ञम्—यज्ञों के स्वामी की; क्रतुभिः—कर्मकाण्डों द्वारा; आत्म-वित्—आत्म-साक्षात्कार के द्वारा पूर्णतया अभिज्ञ; भूरि-दक्षिणैः—ब्राह्मणों को प्रचुर दक्षिणा देकर; सर्व-देव-मयम्—सारे देवताओं से युक्त; देवम्—भगवान् को; सर्व-आत्मकम्—सबों के परमात्मा; अति-इन्द्रियम्—दिव्य रूप से स्थित; द्रव्यम्—अवयव; मन्त्रः—वैदिक स्तोत्रों का उच्चारण; विधिः—विधान; यज्ञः—पूजन; यजमानः—यज्ञ करने वाला; तथा—सहित; ऋत्विजः—पुरोहित; धर्मः—धार्मिक नियम; देशः—देश; च—तथा; कालः—समय; च—भी; सर्वम्—हर वस्तु; एतत्—ये सब; यत्—जो है; आत्मकम्—आत्म-साक्षात्कार के लिए उपयुक्त।

भगवान् महान् यज्ञों के कल्याणकारी पक्षो से—यथा यज्ञ की सामग्री, वैदिक स्तोत्रों का

उच्चारण, विधि-विधान, यज्ञकर्ता, पुरोहित, यज्ञ-फल, यज्ञ-शाला, यज्ञ के समय, इत्यादि से भिन्न नहीं हैं। मान्धाता ने आत्म-साक्षात्कार के नियमों को जानते हुए दिव्य पद पर स्थित परमात्मा स्वरूप उन भगवान् विष्णु की पूजा की जो समस्त देवताओं से युक्त हैं। उसने ब्राह्मणों को भी प्रचुर दान दिया और इस तरह उसने भगवान् की पूजा करने के लिए यज्ञ किया।

यावत्सूर्य उदेति स्म यावच्च प्रतितिष्ठति ।
तत्सर्वं यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते ॥ ३७॥

शब्दार्थ

यावत्—जब तक; सूर्यः—सूर्य; उदेति—उदय होता है; स्म—भूतकाल में; यावत्—जब तक; च—भी; प्रतितिष्ठति—रहता है; तत्—उपर्युक्त वस्तुएँ; सर्वम्—सभी; यौवनाश्वस्य—युवनाश्व के पुत्र; मान्धातुः—मान्धाता के; क्षेत्रम्—स्थान; उच्यते—कहलाता है।

क्षितिज में जहाँ से सूर्य उदय होकर चमकता है और जहाँ सूर्य अस्त होता है वे सारे स्थान युवनाश्व के पुत्र विख्यात मान्धाता के अधिकार में माने जाते हैं।

शशबिन्दोर्दुहितरि बिन्दुमत्यामधान्नृपः ।
पुरुकुत्समम्बरीषं मुचुकुन्दं च योगिनम् ।
तेषां स्वसारः पञ्चाशत्सौभरिं वव्रिरे पतिम् ॥ ३८॥

शब्दार्थ

शशबिन्दोः—शशबिन्दु राजा की; दुहितरि—पुत्री; बिन्दुमत्याम्—बिन्दुमती से; अधात्—उत्पन्न किया; नृपः—राजा (मान्धाता) ने; पुरुकुत्सम्—पुरुकुत्स को; अम्बरीषम्—अम्बरीष को; मुचुकुन्दम्—मुचुकुन्द को; च—तथा; योगिनम्—योगी; तेषाम्—उनमें से; स्वसारः—बहनों ने; पञ्चाशत्—पचास; सौभरिम्—सौभरि ऋषि को; वव्रिरे—स्वीकार किया; पतिम्—पति रूप में।

शशबिन्दु की पुत्री बिन्दुमती के गर्भ से मान्धाता को तीन पुत्र उत्पन्न हुए। इनके नाम थे पुरुकुत्स, अम्बरीष तथा महान् योगी मुचुकुन्द। इन तीनों भाइयों के पचास बहिनें थीं जिन्होंने सौभरि ऋषि को अपना पति चुना।

यमुनान्तर्जले मग्नस्तप्यमानः परं तपः ।
निर्वृतिं मीनराजस्य दृष्ट्वा मैथुनधर्मिणः ॥ ३९॥
जातस्पृहो नृपं विप्रः कन्यामेकामयाचत ।
सोऽप्याह गृह्यतां ब्रह्मन्कामं कन्या स्वयंवरे ॥ ४०॥

शब्दार्थ

यमुना-अन्तः-जले—यमुना नदी के गहरे जल में; मग्नः—पूरी तरह डूबकर; तप्यमानः—तपस्या करते हुए; परम्—असामान्य; तपः—तपस्या; निर्वृतिम्—आनन्द, सुख; मीन-राजस्य—बड़ी मछली का; दृष्ट्वा—देखकर; मैथुन-धर्मिणः—मैथुनरत; जात-स्पृहः—मन

चलायमान हो उठा; नृपम्—राजा (मान्धाता) के पास; विप्रः—ब्राह्मण (सौभरि ऋषि); कन्याम् एकाम्—इकलौती कन्या; अयाचत—माँगा; सः—उस, राजा ने; अपि—भी; आह—कहा; गृह्यताम्—आप ले सकते हैं; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; कामम्—चाहती है; कन्या—पुत्री; स्वयंवरे—स्वयं चुनाव में, स्वयंवर में।

सौभरि ऋषि यमुना नदी के गहरे जल में तपस्या में तल्लीन थे कि उन्होंने मछलियों के एक जोड़े को संभोगरत देखा। इस तरह उन्होंने विषयी जीवन का सुख अनुभव किया जिससे प्रेरित होकर वे राजा मान्धाता के पास गये और उनसे उनकी एक कन्या की याचना की। इस याचना के उत्तर में राजा ने कहा, ''हे ब्राह्मण, मेरी कोई भी पुत्री अपनी इच्छा से किसी को भी पति चुन सकती है।''

तात्पर्य : यहाँ सौभरि ऋषि की कहानी का शुभारम्भ होता है। विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार मान्धाता मथुरा का राजा था और सौभरि ऋषि यमुना नदी के गहरे जल में तपस्या कर रहे थे। जब ऋषि में कामेच्छा जगी तो वे जल से बाहर निकले और राजा मान्धाता के पास जाकर उन्होंने कहा कि वे अपनी एक पुत्री का विवाह उनसे कर दें।

स विचिन्त्याप्रियं स्त्रीणां जरठोऽहमसन्मतः ।
वलीपलित एजत्क इत्यहं प्रत्युदाहृतः ॥ ४१ ॥
साधयिष्ये तथात्मानं सुरस्त्रीणामभीप्सितम् ।
किं पुनर्मनुजेन्द्राणामिति व्यवसितः प्रभुः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

सः—उस, सौभरि मुनि ने; विचिन्त्य—अपने आप सोचकर; अप्रियम्—अच्छा न लगने वाला; स्त्रीणाम्—स्त्रियों के द्वारा; जरठः—वृद्ध होने के कारण अशक्त; अहम्—मैं; असत्-मतः—उनके द्वारा अनिच्छित; वली—झुर्री पड़ा; पलितः—सफेद बालों वाला; एजत्-कः—सदा सिर हिलता हुआ; इति—इस प्रकार; अहम्—मैं; प्रत्युदाहृतः—त्यक्त; साधयिष्ये—मैं इस तरह करूँगा; तथा—जिस तरह; आत्मानम्—मेरा शरीर; सुर-स्त्रीणाम्—स्वर्ग की स्त्रियों की; अभीप्सितम्—इच्छित; किम्—क्या कहूँ; पुनः—फिर भी; मनुज-इन्द्राणाम्—संसार के राजाओं की कन्याओं का; इति—इस तरह; व्यवसितः—निश्चित; प्रभुः—शक्तिशाली योगी सौभरि ने।

सौभरि मुनि ने सोचा: मैं वृद्धावस्था के कारण अब निर्बल हो गया हूँ। मेरे बाल सफेद हो चुके हैं, मेरी चमड़ी झूल रही है और मेरा सिर सदा हिलता रहता है। इसके अतिरिक्त मैं योगी हूँ। अतएव ये स्त्रियाँ मुझे पसन्द नहीं करतीं। चूँकि राजा ने मुझे तिरस्कृत कर दिया है अतएव मैं अपने शरीर को ऐसा बनाऊँगा कि मैं संसारी राजाओं की कन्याओं का ही नहीं अपितु सुर-सुन्दरियों के लिए भी अभीष्ट बन जाऊँ।

मुनिः प्रवेशितः क्षत्रा कन्यान्तःपुरमृद्धिमत् ।

वृतः स राजकन्याभिरेकं पञ्चाशता वरः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

मुनिः—सौभरि मुनि; प्रवेशितः—भीतर ले जाये गये; क्षत्रा—महल के दूत द्वारा; कन्या-अन्तःपुरम्—राजकुमारियों के रिहायशी मकान में; ऋद्धि-मत्—सभी प्रकार से अत्यन्त ऐश्वर्यमय; वृतः—स्वीकार किया; सः—उसने; राज-कन्याभिः—सारी राजकुमारियों द्वारा; एकम्—अकेला वह; पञ्चाशता—पचासों द्वारा; वरः—पति।

तत्पश्चात् जब सौभरि मुनि तरुण और रूपवान हो गये तब राजप्रासाद का दूत उन्हें राजकुमारियों के अन्तःपुर में ले गया जो अत्यन्त ऐश्वर्यमय था। तत्पश्चात् उन पचासों राजकुमारियों ने उस अकेले व्यक्ति को अपना पति बना लिया।

तासां कलिरभूद्भूयांस्तदर्थेऽपोह्य सौहृदम् ।
ममानुरूपो नायं व इति तद्गतचेतसाम् ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

तासाम्—सारी राजकुमारियों में; कलिः—कलह तथा वैर; अभूत्—हो गया; भूयान्—अत्यधिक; तत्-अर्थे—सौभरि मुनि को लेकर; अपोह्य—त्यागकर; सौहृदम्—अच्छे सम्बन्ध; मम—मेरे; अनुरूपः—उपयुक्त व्यक्ति; न—नहीं; अयम्—यह; वः—तुम्हारा; इति—इस प्रकार; तत्-गत-चेतसाम्—उससे आकृष्ट होकर।

तत्पश्चात् राजकुमारियाँ सौभरि मुनि द्वारा आकृष्ट होकर अपना बहिन का नाता भूल गईं और परस्पर यह कहकर झगड़ने लगीं ''यह व्यक्ति मेरे योग्य है, तुम्हारे योग्य नहीं।'' इस तरह से उन सबों में काफी विरोध उत्पन्न हो गया।

स बह्वृचस्ताभिरपारणीय
तपःश्रियानर्घ्यपरिच्छदेषु ।
गृहेषु नानोपवनामलाम्भः
सरःसु सौगन्धिककाननेषु ॥ ४५ ॥
महार्हशय्यासनवस्त्रभूषण
स्नानानुलेपाभ्यवहारमाल्यकैः ।
स्वलङ्कृतस्त्रीपुरुषेषु नित्यदा
रेमेऽनुगायद्द्विजभृङ्गवन्दिषु ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

सः—वह, सौभरि ऋषि; बहु-ऋचः—वैदिक मंत्रों का उपयोग करने में पटु; ताभिः—अपनी पत्नियों के साथ; अपारणीय—असीम; तपः—तपस्या का फल; श्रिया—ऐश्वर्य से; अनर्घ्य—भोग की सामग्री; परिच्छदेषु—विभिन्न वस्त्रों से सज्जित; गृहेषु—घर में; नाना—तरह-तरह के; उपवन—पार्क; अमल—स्वच्छ; अम्भः—जल; सरःसु—झीलों में; सौगन्धिक—अत्यन्त सुगन्धित; काननेषु—बगीचों में; महा-अर्ह—अत्यन्त कीमती; शय्या—बिस्तर; आसन—बैठने के स्थान; वस्त्र—वस्त्र; भूषण—गहने; स्नान—स्नानागार; अनुलेप—चंदन; अभ्यवहार—व्यंजन; माल्यकैः—तथा मालाओं से; सु-अलङ्कृत—भलीभाँति सज्जित; स्त्री—स्त्रियाँ; पुरुषेषु—

पुरुषों सहित; नित्यदा—निरन्तर; रेमे—भोग किया; अनुगायत्—गायन के साथ; द्विज—पक्षी; भृङ्ग—भौंरे; वन्दिषु—तथा बन्दीजन, पेशेवर गवैये।

चूँकि सौभरि मुनि मंत्रोचारण करने में पूर्णरूपेन पटु थे अतएव उनकी कठिन तपस्या से ऐश्वर्यशाली घर, वस्त्र, गहने, सुसज्जित दास तथा दासियाँ स्वच्छ जलवाली झीलें, उद्यानों से युक्त विविध बगीचे उत्पन्न हो गये। उद्यानों में विविध प्रकार के सुगन्धित फूल, चहकते पक्षी तथा गुनगुनाते भौंरे थे और मुनि पेशेवर गायकों से घिरे थे। सौभरि मुनि के घर में मूल्यवान बिस्तर, आसन, गहने, स्नानागार और तरह-तरह के चन्दनलेप, फूलमालाएँ तथा स्वादिष्ट व्यंजन थे। इस प्रकार ऐश्वर्यशाली साज-सामान से घिरे हुए सौभरि मुनि अपनी अनेक पत्नियों के साथ गृहकार्यों में व्यस्त हो गये।

तात्पर्य : सौभरि ऋषि महान् योगी थे। योग-सिद्धियों से आठ प्रकार के भौतिक ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं—अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व तथा कामावसायिता। सौभरि मुनि ने अपनी योग-सिद्धियों के बल पर अतिश्रेष्ठ भौतिक ऐश्वर्य का भोग किया। *बह्वृच* शब्द का अर्थ है ''मंत्रोचारण में पटु।'' जिस प्रकार सामान्य भौतिक साधनों से भौतिक ऐश्वर्य प्राप्त किया जा सकता है उसी प्रकार मंत्रों की सूक्ष्म विधि से भी ऐश्वर्य प्राप्त किया जा सकता है। सौभरि मुनि ने मंत्रोच्चार के बल पर भौतिक ऐश्वर्य की व्यवस्था कर दी, किन्तु यह जीवन की सिद्धि नहीं थी। जैसा कि आगे देखा जायेगा, सौभरि मुनि भौतिक ऐश्वर्य से ऊब उठे और हर वस्तु त्यागकर वे वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण कर फिर जंगल में चले गये। वहाँ उन्होंने अन्तिम सिद्धि प्राप्त की। जो लोग आत्मतत्त्ववित् नहीं हैं अर्थात् जीवन का आध्यात्मिक मूल्य नहीं जानते हैं, वे बाहरी भौतिक ऐश्वर्य से सन्तुष्ट हो सकते हैं, किन्तु आत्मतत्त्ववित् सन्तुष्ट नहीं होते। सौभरि मुनि के जीवन तथा कार्यों से हम यही शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

यद्गार्हस्थ्यं तु संवीक्ष्य सप्तद्वीपवतीपतिः ।
विस्मितः स्तम्भमजहात्सार्वभौमश्रियान्वितम् ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

यत्—जो; गार्हस्थ्यम्—गृहस्थ जीवन को; तु—लेकिन; संवीक्ष्य—देखकर; सप्त-द्वीप-वती-पतिः—सात द्वीप वाले समस्त जगत का राजा मान्धाता; विस्मितः—आश्चर्यचकित; स्तम्भम्—गौरवशाली पद के कारण घमंड; अजहात्—त्याग दिया; सार्व-भौम—सारे जगत का सम्राट; श्रिया-अन्वितम्—सभी प्रकार के ऐश्वर्यों से युक्त।

सप्तद्वीपमय जगत के राजा मान्धाता ने जब सौभरि मुनि के घरेलू ऐश्वर्य को देखा तो वे आश्चर्यचकित रह गये। उन्होंने जगत के सम्राट के रूप में अपनी झूठी प्रतिष्ठा छोड़ दी।

तात्पर्य : हर एक को अपने पद का गर्व होता है, किन्तु यहाँ पर एक विचित्र अनुभव हुआ। सम्पूर्ण जगत के एक सम्राट ने सौभरि मुनि के ऐश्वर्य को देखकर भौतिक सुखों में अपने आपको पराजित अनुभव किया।

एवं गृहेष्वभिरतो विषयान्विविधैः सुखैः ।
सेवमानो न चातुष्यदाज्यस्तोकैरिवानलः ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; गृहेषु—घरेलू कार्यों में; अभिरतः—सदैव व्यस्त; विषयान्—भौतिक साज-सामग्री; विविधैः—नाना प्रकार के; सुखैः—सुख से; सेवमानः—सेवित होकर; न—नहीं; च—भी; अतुष्यत्—सन्तुष्ट हुआ; आज्य-स्तोकैः—घी की बूँदों से; इव—सदृश; अनलः—अग्नि।

इस प्रकार सौभरि मुनि इस भौतिक जगत में इन्द्रियतृप्ति करते रहे, किन्तु वे तनिक भी सन्तुष्ट नहीं थे जिस प्रकार निरन्तर घी की बूँदें पाते रहने से अग्नि कभी जलना बन्द नहीं करती।

तात्पर्य : भौतिक इच्छा जलती आग के समान है। यदि आग को निरन्तर घी की बूँदें मिलती रहें तो आग बढ़ती ही जायेगी, और कभी नहीं बुझेगी। अतएव भौतिक इच्छाओं की पूर्ति करते रहने की नीति से सफलता मिलने वाली नहीं है। आधुनिक सभ्यता में हर व्यक्ति आर्थिक विकास में लगा हुआ है जो भौतिक अग्नि को निरन्तर घी की बूँदें प्रदान करने के तुल्य है। पाश्चात्य देश भौतिक सभ्यता की पराकाष्ठा प्राप्त कर चुके हैं, किन्तु तो भी लोग असन्तुष्ट हैं। असली सन्तोष तो कृष्णभावनामृत है। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (५.२९) में हुई है जहाँ कृष्ण यह कहते हैं—

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥

''साधुजन मुझे समस्त यज्ञों, तपस्याओं का चरम लक्ष्य, समस्त लोकों तथा देवताओं का परम प्रभु एवं समस्त जीवों का उपकारी एवं हितैषी जानकर भौतिक कष्टों से शान्ति प्राप्त करते हैं।'' अतएव मनुष्य को चाहिए कि कृष्णभावनामृत ग्रहण करे और अनुष्ठानपूर्वक कार्य करते हए कृष्णभावनामृत में प्रगति करे। तभी मनुष्य को शान्ति तथा ज्ञानमय नित्य आनन्दपूर्ण जीवन प्राप्त हो सकता है।

स कदाचिदुपासीन आत्मापह्नवमात्मनः ।

ददर्श बह्वृचाचार्यो मीनसङ्गसमुत्थितम् ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

सः—वह, सौभरि मुनि; कदाचित्—एक दिन; उपासीनः—बैठा हुआ; आत्म-अपह्नवम्—तपस्या के पद से च्युत होकर; आत्मनः—स्वयं; ददर्श—देखा; बहु-ऋच-आचार्यः—मंत्रों के उच्चारण में पटु सौभरि मुनि; मीन-सङ्ग—मछली का मैथुन; समुत्थितम्—इस घटना से उत्पन्न।

तत्पश्चात् मंत्रोच्चार करने में पटु सौभरि मुनि एक दिन जब एकान्त स्थान में बैठे थे, तो उन्होंने अपने पतन के कारण के विषय में सोचा। कारण यही था कि उन्होंने एक मछली के मैथुन से अपने आपको सम्बद्ध कर दिया था।

तात्पर्य : विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टीका है कि सौभरि मुनि का उनकी तपस्या से पतन *वैष्णव अपराध* के कारण हुआ था। कथा इस प्रकार है कि जब गरुड़ ने मछली को खाना चाहा तो सौभरि मुनि ने बिना कारण उस मछली को अपनी शरण में रख लिया। चूँकि गरुड़ उस मछली को न खा पाने से निराश हुआ, इसलिए सौभरि मुनि ने एक वैष्णव के प्रति एक घोर अपराध किया था। इस वैष्णव अपराध के कारण सौभरि मुनि का योग तपस्या के उच्च पद से पतन हुआ। अतएव मनुष्य को चाहिए कि वैष्णव के कार्य में बाधा न डाले। हमें सौभरि मुनि से सम्बन्धित इस घटना से यही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

अहो इमं पश्यत मे विनाशं
तपस्विनः सच्चरितव्रतस्य ।
अन्तर्जले वारिचरप्रसङ्गात्
प्रच्यावितं ब्रह्म चिरं धृतं यत् ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

अहो—ओह; इमम्—यह; पश्यत—जरा देखो तो; मे—मेरा; विनाशम्—पतन; तपस्विनः—तपस्वी; सत्-चरित—अच्छे चरित्र वाला; व्रतस्य—व्रत धारण करने वाले का; अन्तः-जले—जल के भीतर; वारि-चर-प्रसङ्गात्—जलचरों के मैथुन कार्य से; प्रच्यावितम्—गिरा हुआ; ब्रह्म—ब्रह्म-साक्षात्कार या तपस्या के कार्यों से; चिरम्—दीर्घकाल तक; धृतम्—किये गये; यत्—जो।

ओह! गम्भीर जल के भीतर तपस्या करने पर भी तथा साधु पुरुषों द्वारा अभ्यास किये जाने वाले सारे विधि-विधानों का पालन करते हुए भी मैंने मात्र मछली के मैथुन-सान्निध्य के कारण अपनी दीर्घकालीन तपस्या का फल हाथों से जाने दिया। हर एक को इस पतन को देखकर इससे सीख लेनी चाहिए।

सङ्गं त्यजेत मिथुनव्रतीनां मुमुक्षुः

सर्वात्मना न विसृजेद्बहिरिन्द्रियाणि ।
एकश्चरन्रहसि चित्तमनन्त ईशे
युञ्जीत तद्व्रतिषु साधुषु चेत्प्रसङ्गः ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

सङ्गम्—संगति; त्यजेत—छोड़ देना चाहिए; मिथुन-व्रतीनाम्—वैध या अवैध मैथुन कार्यों में लगे रहने वाले व्यक्तियों का; मुमुक्षुः—मोक्ष चाहने वाले व्यक्ति; सर्व-आत्मना—सभी प्रकार से; न—नहीं; विसृजेत्—काम में लगाये; बहिः-इन्द्रियाणि—बाहरी इन्द्रियों को; एकः—अकेले; चरन्—घूमते हुए; रहसि—एकान्त स्थान में; चित्तम्—मन; अनन्ते ईशे—असीम भगवान् के चरणकमलों पर स्थिर; युञ्जीत—लगाये; तत्-व्रतिषु—एक ही कोटि के लोगों के साथ (जो भवबन्धन से मोक्ष के कामी हों); साधुषु—ऐसे पुरुषों की; चेत्—यदि; प्रसङ्गः—संगति।

भवबन्धन से मोक्ष की कामना करने वाले पुरुष को वासनामय जीवन में रुचि रखने वाले व्यक्तियों की संगति छोड़ देनी चाहिए और अपनी इन्द्रियों को किसी बाह्यकर्म में (देखने, सुनने, बोलने, चलने इत्यादि) नहीं लगाना चाहिए। उसे सदैव एकान्त स्थान में ठहरना चाहिए और मन को अनन्त भगवान् के चरणकमलों पर पूर्णतः स्थिर करना चाहिए। यदि कोई संगति करनी भी हो तो उसे उसी प्रकार के कार्य में लगे पुरुषों की संगति करनी चाहिए।

तात्पर्य : सौभरि मुनि अपने अनुभव से प्राप्त निष्कर्षों को हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हुए उपदेश देते हैं कि भवसागर को पार करने की इच्छा रखने वाले मनुष्यों को वासनामय जीवन और धन-संग्रह में व्यस्त रहने वाले मनुष्यों की संगति त्याग देनी चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु ने भी यही उपदेश दिया है :

निष्किञ्चनस्य भगवद्भजनोन्मुखस्य
पारं परं जिगमिषोर्भवसागरस्य।
सन्दर्शनं विषयिणामथ योषितां च
हा हन्त हन्त विषभक्षणतोऽप्यसाधु॥

(*चैतन्य चन्द्रोदय नाटक ८.२७*)

''ओह! भवसागर को पार करने की तथा बिना किसी कामना के भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में व्यस्त रहने की सच्ची इच्छा रखने वाले के लिए इन्द्रियतृप्ति में लगे भौतिकतावादी को देखना तथा इसी प्रकार की रुचि वाली स्त्री को देखना जानबूझ कर विषपान करने से भी घृणित है।''

जो व्यक्ति भवबन्धन से पूर्ण छुटकारा पाना चाहता है उसे भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में लगना चाहिए। उसे विषयी पुरुषों की संगति नहीं करनी चाहिए। हर भौतिकतावादी व्यक्ति काम-वासना में रुचि

रखता है। इस तरह सीधे-सादे शब्दों में यह सलाह दी गई है कि उच्च साधुपुरुष को भौतिकतावादी प्रवृत्ति वाले लोगों की संगति से बचकर रहना चाहिए। श्रील नरोत्तम दास ठाकुर भी आचार्यों की सेवा करने के लिए संस्तुति करते हैं और यदि किसी की संगति करनी ही है तो भक्तों की संगति करनी चाहिए (*तांदेर चरण सेवि भक्त-सने वास*)। कृष्णभावनामृत आन्दोलन भक्त उत्पन्न करने के लिए अपने अनेक केन्द्रों की स्थापना कर रहा है जिससे ऐसे केन्द्रों के सदस्यों से सम्पर्क बढ़ाने से लोगों को भौतिक कार्यों में स्वत: अरुचि होने लगे। यद्यपि यह अत्यन्त महत्त्वाकांक्षी प्रस्ताव है, किन्तु यह संघटन भगवान् चैतन्य महाप्रभु की दया से प्रभावशाली सिद्ध हो रहा है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्यों की क्रमश: संगति करने, केवल प्रसाद ग्रहण करने तथा हरे कृष्णमंत्र का कीर्तन करने से सामान्य लोग काफी ऊँचे उठ जाते हैं। सौभरि मुनि को पश्चात्ताप हो रहा है कि अत्यंत गहरे जल में भी वे बुरी संगति में रहे और मैथुनरत मछली की कुसंगति से उनका पतन हुआ। एकान्त स्थान भी तब तक सुरक्षित नहीं होता जब तक वहाँ अच्छी संगति न मिले।

एकस्तपस्व्यहमथाम्भसि मत्स्यसङ्गात्
पञ्चाशदासमुत पञ्चसहस्रसर्ग: ।
नान्तं व्रजाम्युभयकृत्यमनोरथानां
मायागुणैर्हृतमतिर्विषयेऽर्थभाव: ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

एक:—एकमात्र; तपस्वी—मुनि; अहम्—मैंने; अथ—इस प्रकार; अम्भसि—गहरे जल में; मत्स्य-सङ्गात्—मछली की संगति में रहने से; पञ्चाशत्—पचास; आसम्—पत्नियाँ प्राप्त कीं; उत—हर एक से सौ-सौ पुत्र उत्पन्न करना दूर रहा; पञ्च-सहस्र-सर्ग:—पाँच हजार सन्ताने; न अन्तम्—कोई अन्त नहीं; व्रजामि—ढूँढ सकता हूँ; उभय-कृत्य—इस जन्म तथा अगले जन्म के कार्य; मनोरथानाम्—मनोरथ; माया-गुणै:—प्रकृति के गुणों द्वारा प्रभावित; हृत—खोया हुआ; मति: विषये—भौतिक वस्तुओं के लिए विशेष आकर्षण; अर्थ-भाव:—स्वार्थ की बातें।

शुरू में मैं अकेला था और योग की तपस्या करता रहता था, किन्तु बाद में मैथुनरत मछली की संगति के कारण मुझमें विवाह करने की इच्छा जगी। तब मैं पचास पत्नियों का पति बन गया और हर एक ने एक एक सौ पुत्र उत्पन्न किये। इस तरह मेरे परिवार में पाँच हजार सदस्य हो गये। प्रकृति के गुणों से प्रभावित होकर मेरा पतन हुआ और मैंने सोचा कि भौतिक जीवन में मैं सुखी रहूँगा। इस तरह इस जीवन तथा अगले जीवन में भोग के लिए मेरी इच्छाओं का कोई अन्त नहीं है।

एवं वसन्गृहे कालं विरक्तो न्यासमास्थित: ।

वनं जगामानुययुस्तत्पत्न्यः पतिदेवताः ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; वसन्—रहते हुए; गृहे—घर पर; कालम्—समय बिताकर; विरक्तः—विरक्त हो गया; न्यासम्—वानप्रस्थ आश्रम में; आस्थितः—स्थित हो गया; वनम्—जंगल में; जगाम—वह चला गया; अनुययुः—उसके पीछे-पीछे; तत्-पत्न्यः—उसकी सारी पत्नियाँ; पति-देवताः—क्योंकि पति ही उनका एकमात्र आराध्य था।.

इस तरह उसने कुछ काल तक घरेलू कार्यों में अपना जीवन बिताया लेकिन बाद में वह भौतिक भोग से विरक्त हो गया। उसने भौतिक संगति का परित्याग करने के लिए वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण किया और फिर वह जंगल में चला गया। पतिपरायणा पत्नियों ने उसका अनुसरण किया क्योंकि अपने पति के अतिरिक्त उनका कोई आश्रय न था।

तत्र तप्त्वा तपस्तीक्ष्णमात्मदर्शनमात्मवान् ।
सहैवाग्निभिरात्मानं युयोज परमात्मनि ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ

तत्र—जंगल में; तप्त्वा—तपस्या करते हुए; तपः—तपस्या के नियम; तीक्ष्णम्—अत्यन्त कठोर; आत्म-दर्शनम्—आत्म-साक्षात्कार में सहायक; आत्मवान्—आत्म से अभिज्ञ; सह—साथ में; एव—निश्चय ही; अग्निभिः—अग्नियों के; आत्मानम्—स्वयं को; युयोज—लगाया; परम-आत्मनि—परमात्मा में।.

जब आत्मवान सौभरि मुनि जंगल में चले गये तो उन्होंने कठोर तपस्याएँ की। इस तरह अन्ततः मृत्यु के समय उन्होंने अग्नि में स्वयं को भगवान् की सेवा में लगा दिया।

तात्पर्य : मृत्यु के समय अग्नि स्थूल शरीर को जला डालती है और यदि भौतिक भोग की कोई इच्छा नहीं होती तो सूक्ष्म शरीर का भी अन्त हो जाता है, केवल शुद्ध आत्मा बचा रहता है। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* में हुई है (*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति*)। यदि मनुष्य स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों प्रकार के भौतिक देहों के बन्धन से मुक्त होता है और शुद्ध आत्मा बना रहता है तो वह भगवान् की सेवा करने के लिए भगवद्धाम वापस जाता है। *त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति*—वह भगवद्धाम को वापस जाता है। इस तरह ऐसा लगता है कि सौभरि मुनि को वह पूर्ण अवस्था प्राप्त हुई थी।

ताः स्वपत्युर्महाराज निरीक्ष्याध्यात्मिकीं गतिम् ।
अन्वीयुस्तत्प्रभावेण अग्निं शान्तमिवार्चिषः ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

ताः—सौभरि की सारी पत्नियाँ; स्व-पत्युः—अपने पति के साथ; महाराज—हे राजा परीक्षित; निरीक्ष्य—देखकर; अध्यात्मिकीम्—आध्यात्मिक; गतिम्—प्रगति; अन्वीयुः—अनुसरण किया; तत्-प्रभावेण—यद्यपि वे अयोग्य थीं किन्तु अपने पति के प्रभाव से, वे भी आध्यात्मिक लोक को चली गईं; अग्निम्—अग्नि; शान्तम्—पूर्णतया एकाकार; इव—सदृश; अर्चिषः—लपटें।

हे महाराज परीक्षित, अपने पति को आध्यात्मिक जगत की ओर प्रगति करते देखकर सौभरि मुनि की पत्नियाँ भी मुनि की आध्यात्मिक शक्ति से वैकुण्ठलोक में प्रवेश करने में समर्थ हुईं जिस तरह अग्नि बुझाने पर अग्नि की ज्वालाएँ शमित हो जाती हैं।

तात्पर्य : जैसा कि *भगवद्गीता* (९.३२) में कहा गया है—*स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्*। आध्यात्मिक नियमों का पालन करने में स्त्रियाँ पर्याप्त बलशाली नहीं मानी जातीं, किन्तु यदि कोई इतनी भाग्यशाली हो कि उसे ऐसा पति मिले जो अध्यात्म विद्या में बढ़ा-चढ़ा हो और यदि वह उसकी सेवा करती हो तो उसे भी अपने पति के समान लाभ मिलता है। यहाँ यह स्पष्ट तौर पर कहा गया है कि सौभरि मुनि की पत्नियाँ भी अपने पति के प्रभाव से वैकुण्ठलोक में प्रवेश कर गईं। सौभरि की पत्नियाँ अयोग्य थीं, किन्तु अपने पति की आज्ञाकारिणी होने से वे भी उसके साथ वैकुण्ठलोक में प्रविष्ट हुईं। इस तरह स्त्री को अपने पति की आज्ञाकारिणी दासी होना चाहिए और यदि पति आध्यात्मवादी है तो स्त्री को भी वैकुण्ठ जाने का अवसर स्वयमेव मिल जायेगा।

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत ''सौभरि मुनि का पतन'' नामक छठे अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।